कहानी

वे आँखें

मेघा राठी

नई दिल्ली स्टेशन पर रुकी हुई थी ट्रेन और परिधि खिड़की से बाहर झाँक रही थी. यात्री अपनी सीट पर जल्दी पहुँचने के लिये लगभग भागते हुए जा रहे थे और जिन यात्रियों को यहीं उतरना था, वे भी अपने गंत्वय पर पहुँचने की जल्दी में थे. गर्म समोसे, चाय, नाश्ते अखबार आदि की पुकार लगाते बोगी के अंदर घूम रहे थे और कुछ बाहर से ही आवाज़ लगा रहे थे.

आँखों से ही स्टेशन का भ्रमण करती परिधि की नज़र अचानक उस पर रुक गई. उसकी खिड़की से जरा सा हटकर ही खड़ा था वो. मंझोले कद का सांवला सा युवक था वो मगर उसकी आँखें... इतनी दूर से भी सम्मोहन कर रहीं थीं. कुछ तो था उसके हाव - भाव और व्यक्तित्व में कि परिधि अपने आस -पास की दुनिया से बेखबर होकर उसकी परिधि में ही ठहर गई थी.

शायद किसी को पहुँचाने आया था वह या वह खुद एक यात्री था, परिधि इस पहेली में उलझ गई. उसकी शर्ट का रंग, जूतों की डिजाइन तक अब तक वह याद कर चुकी थी.

काश यह एक बार मेरी ओर देख ले!, अचानक परिधि के दिल ने कहा.

न बाबा, देख लिया तो उसे पता चल जाएगा कि मैं उसे देख रहीं हूं, फिर...!, और परिधि संकुचित होकर अपनी सीट पर टिक गई

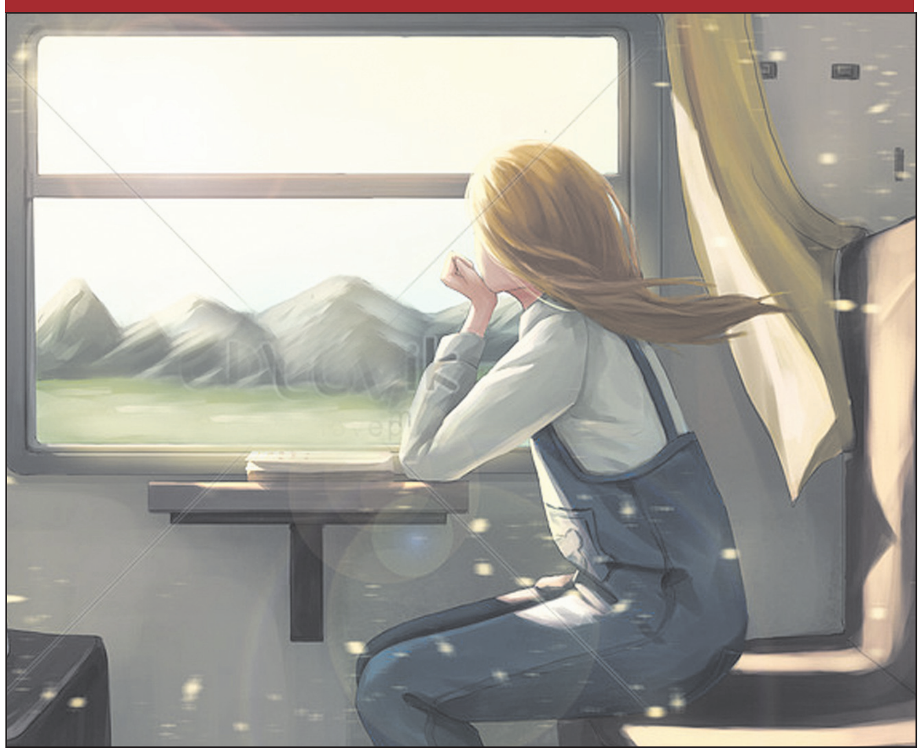

लेकिन कुछ देर बाद ही वह उसे फिर से देखने के लोभ को रोक नहीं सकी.

न जाने कौन है, कहाँ जा रहा है और मैं इसके लिये दीवानी हुई जा रहीं हूं. , परिधि का दिमाग उसे होशियार कर रहा था.

वह दिल्ली से आगरा जा रहीं थी. पढ़ाई पूरी हो चुकी थी उसकी और घर में उसकी शादी की बात चलने लगी थी इसलिए उसे घर बुलाया गया था.

परिधि उसकी आँखों का सम्मोहन तोड़ नहीं पा रहीं थी. तभी ट्रेन धीरे - धीरे प्लेटफॉर्म पर सरकने लगी. उसने देखा, वो अभी भी खड़ा है उसके साथी के साथ. परिधि खुद को रोक न पाई और आवाज़ लगा दी, सुनो, ट्रेन चल दी है, बैठ जाओ. कहते के साथ ही उसे अहसास हुआ कि वह क्या कह गई. उसकी निगाहें परिधि की निगाहों से टकरा गई और उन्हीं कुछ पलों में ही जैसे दुनिया थम गई. वो मुस्कुराया और परिधि पीछे छूटते प्लेटफॉर्म पर उसे अनवरत देख रही थी. ट्रेन ने गति पकड़नी शुरू कर दी और अचानक वो उसे दिखना बंद हो गया.

कहाँ गया? अभी तो वहीं था. ,परिधि ने गहरी सांस खींची. न जाने कौन था, जीवन में कभी दुबारा मिलेगा भी या नहीं! मगर यह तय है कि उसे कभी भूल नहीं पाएगी वो.

ट्रेन तेजी से आगरा की ओर बढ़ रही थी और परिधि नई दिल्ली के उसी स्टेशन पर खुद को छोड़ आई थी. उसकी आँखें बंद थी और न जाने कब आंसू उसके गालों को भिगोने लगे थे.

अरे, क्या हुआ? तुम रोने क्यों लगीं? तभी किसी ने उसके कंधे को नरमी से छुआ. लाल जोड़े में लिपटी परिधि एक झटके में वर्तमान में आ गई. एक जोड़ी खूबसूरत आँखें उसे प्यार और फ़िक्र से देख रही थीं.

मैं साथ हूं तुम्हारे हमेशा, इन आँखों में आंसू नहीं हमारे भविष्य के सपने होने चाहिए. , परिधि के नये नवेले पति ने उसके हाथ थाम कर कहा. वह अपने नये जीवन की शुरुआत करती हुए फिर से सम्मोहन में बंध गई मगर ये वो आँखें नहीं थी जो नई दिल्ली स्टेशन पर जुडी थी पर अब इन आँखों में ही उसका संसार था. परिधि ने अपने लाल दुपट्टे को अपने दिल के पास और अधिक समेट लिया. वे आँखें अब दिल को धड़का रहीं थी और उसकी मेहंदी लगी हथेलियां आंसू पोंछकर अपने जीवनसाथी का हाथ थामकर मुस्कुरा रहीं थीं.

क्लास by बड़े भाई

सफलता पर मंडराते हैं ये तीन खतरे

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

छोटे भाई, हम सबने खूब कहते सुना होगा कि बस एक बार अफसर बन जाऊ, एक बार कहीं अच्छी सी नौकरी अलग जाये या एक बार बढ़िया पैसा आ जाये तो बस सारी झंझट ख़त्म, लाइफ सेट . लेकिन छोटे भाई हमेशा याद रखिएगा और इस आर्टिकल को संभाल कर रख लीजिएगा शायद यह आपके सफल होने पर आपके बड़ा काम आए . छोटे भाई, आप जो बनना चाहते हैं जब वो बन जाते हैं . उसके बाद नई चुनौती शुरू होती है . आपकी इस सफलता को चारों ओर से तीन खतरे घेर लेते हैं . अगर हमने थोड़ी सी भी लापरवाही की तो यह सीधे टूट पड़ते हैं और हमारी उन्नति रोक देते हैं . हमारी लापरवाही का इंतज़ार करते और आक्रमण के लिए तैयार खड़े वो तीन खतरे हैं - अहंकार, आलस और अवसाद.

अहंकार - यह आपको कुछ करने नही देगा. इसके प्रभाव से हम मिली सफलता के मद में हो जाते हैं . यह हमारे आचार, विचार व्यवहार में घुलकर हमें इस भाव से भर देगा कि अब मुझे किसी की ज़रुरत नही, कुछ सीखने की ज़रुरत नही, हमें कोई क्या सिखाएगा, मुझसे बेहतर कोई नही . इससे हम कभी कुछ नया नही सीख पाएंगे और आगे नही बढ़ पाएंगे.

आलस - इससे आप कुछ कर नही पाते. यह आपके भीतर हर काम टालने का भाव भरने की कोशिश में रहेगा कि यह काम कल कर लेंगे, अब मिल गया जो मिलना था, अब क्या करना, आपको कुछ नया करने में आलस रहेगी, हम अपने कम्फर्ट ज़ोन से बाहर निहारना छोड़ देंगे, जो हममें और बेहतर करने की छिपी सारी संभावनाओं को धीरे धीरे मार देगा.

अवसाद - यह आपको संभलने नही देता . छोटे भाई, आपने कितने ही बड़े और चर्चित लोगों को सुना होगा कि वो जब अपने शिखर से अचानक नीचे गिरे तो वो अपने को संभाल नही पाए और अवसाद में चले गये, बीमार पड़ गये, दवाइयां लेनी पड़ गयी आदि आदि.

छोटे भाई, उतार चढ़ाव जीवन का हिस्सा है और ऊँचाई में उतार चढाव सामान्य है . हमें किसी भी मुश्किल के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए वरना यह अवसाद घेर लेता है . तो यह थे तीन खतरे, जो हमेशा किसी भी सफलता के चारों ओर मंडराते हैं.

हमेशा अपनी सफलता को इनसे बचाकर रखिएगा . इससे आप निर्बाध रूप से उन्नति करते जायेंगे . बस यही कहना था ,धन्यवाद.

व्यंग्य रचना

निराली महिमा है हाजिरी की

भावेश कानूनगो

जीवन में हाजिरी का बड़ा महत्व है. यह सिलसिला जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता है. जैसे ही बालक का जन्म होता है, डॉक्टर उसकी पहली हाजिरी दर्ज कर देता है और फिर यह क्रम तब जाकर थमता है, जब मृत्यु के बाद यमराज के दरबार में अंतिम हाजिरी लगानी पड़ती है. वहाँ किए-कराए का पूरा हिसाब जमा करना होता है, और यदि पुण्य कर्म की हाजिरी कम हो, तो मनुष्य को सीधे समासे के कड़ाह में उबाला जाता है.

हाजिरी का इतिहास प्राचीनकाल से चला आ रहा है. जब राजदरबार में प्रणाम कर उपस्थिति दर्ज की जाती थी. भगवान के समक्ष घंटी बजाकर हाजिरी लगाने की परंपरा भी पुरानी है. लोग इस तरह घंटी बजाते हैं मानो उसकी आवाज़ से भगवान उनकी हाजिरी लगा देंगे.

हाजिरी का महत्व सबसे पहले स्कूल में समझ आता है. वहाँ कम हाजिरी के कारण बच्चे को 'स्वाध्यायी' बनाकर कक्षा से बाहर कर दिया जाता है, मानो शिक्षा नहीं, तपस्या करने भेजा गया हो. बच्चों को फेल होने से ज़्यादा डर हाजिरी का होता है. जब पेरेंट-टीचर मीटिंग में हाजिरी का ब्योरा सामने आता है, तो माता-पिता की सांसें वैसे ही अटक जाती हैं, जैसे उनके सामने साक्षात चित्रगुप्त पाप-पुण्य का हिसाब लेकर जुर्माने की पर्ची थमा रहे हों. मीटिंग के बाद माता-पिता साक्षात धर्मराज बनकर बच्चों के कर्मों का फल चप्पलों और जूतों से प्रदान करते हैं.

नौकरी में हाजिरी का महत्व और भी बढ़ जाता है. यहाँ हाजिरी कर्म की साक्षी बनती है और हाजिरी रजिस्टर धर्मग्रंथ का रूप ले लेता है, जिस पर रोज़ हस्ताक्षर करना मानो पुण्य-लाभ अर्जित करने जैसा है. महीने के अंत में यही हाजिरी कर्मफल रूपी वेतन के रूप में प्राप्त होती है. इस हाजिरी के चक्कर में कई बार मनुष्य को 56 भोग का त्याग भी करना पड़ता है और धर्मपत्नी के कोप का भाजन भी बनना पड़ता है. इसी पर गाने भी बने हैं, तेरी दो टकिया की नौकरी में मेरा लाखों का सावन जाए.

हाजिरी लगाने का तरीका भी सबका अलग होता है. एक सीधा-सादा कर्मवीर योद्धा समय पर कार्य करता है. कुछ महापुरुष तो एक साथ कई दिनों की हाजिरी लगाकर सोचते हैं कि जैसे वर्षों पाप करने के बाद एक गंगा-स्नान से सब पवित्र हो गया हो. कुछ ऐसे पुण्यवान होते हैं, जिनकी हाजिरी घर बैठे दर्ज हो जाती है, मानो घर बैठे गंगा आ गई हो. कुछ तो केवल कार्यालय में आकर हाजिरी लगाते हैं और फिर अपनी दुकान में हाजिरी देने निकल जाते हैं. उनकी हाजिरी कबड्डी के खेल जैसी होती है—रजिस्टर को बस छूकर कबड्डी कहते हुए लौट जाना और मेडल पक्का! अगर ओलंपिक में 'हाजिरी-कबड्डी' होती, तो ये हाजिरी-वीर महानुभाव भारत हर बार गोल्ड मेडल जीत लाते. ऐसे ही महापुरुषों के कारण सरकार और प्रबंधन भी चौकन्ने हो गए हैं. उन्होंने हाजिरी का तरीका बदल दिया, अब अंगूठे या उंगली के निशान से ही हाजिरी लगेगी. रजिस्टर की जगह बायोमेट्रिक मशीन आते ही कर्मचारी की हालत एकलव्य जैसी हो जाती है, मानो उससे अंगूठा मांगा जा रहा हो. द्रोणाचार्य की तरह प्रबंधन ने भी अंगूठा लेकर अनुपस्थिति और मक्कारी की शक्ति काट दी. लेकिन जुगाड़ू जनता कहाँ हार मानने वाली थी! जैसे मंदिर में बाहर से ही आधा झुककर, गर्दन हिलाकर 'रिमोट प्रणाम' कर लिया जाता है, वैसे ही ऑफिस में भी दिन में दो बार 'एकलव्य-रूपी' अंगूठा चढ़ा दिया जाता है, भले ही चढ़ाने वाला पास के ढाबे पर चाय की चुस्की ले रहा हो.

विद्यालयों में ऑनलाइन हाजिरी आने पर शिक्षकों की चिंता बढ़ी. दशकों पुरानी परंपरा -कभी खेत में पानी देना, कभी घर का सामान पहुँचाना अब खतरे में है. तकनीक ने उपस्थिति को कर्म का प्रमाण बना दिया, और 'एवजी' मास्टर तथा कामचोर मास्टर की कला इतिहास में दर्ज होने लगी है.

हाजिरी की महिमा निराली है, यह केवल उपस्थिति का प्रमाण नहीं, बल्कि कर्मनिष्ठा, चालाकी और जुगाड़ का भी पवित्र दस्तावेज़ है. यमराज के दरबार में भी चित्रगुप्त इसे देखकर कहेंगे-वाह! हाजिरी तो पूरी है, बाकी हिसाब बाद में निपटाएँगे. तकनीक चाहे जितनी चालाक हो जाए, हमारी जुगाड़ उससे तेज दौड़ती है. काम हो या न हो, हाजिरी पूरी होनी चाहिए, क्योंकि अब तो लगता है, मोक्ष भी उन्हीं को मिलेगा जिनका नाम यमराज की रजिस्टर में 'पूर्ण हाजिरी' के साथ दर्ज है.

पुस्तक चर्चा

एक किशोर कलाकार की मनोदशाओं का नाच

शिरीष खरे

चाहे लावणी हो, बाउल हो, या कथक, एक जमाना था जब नृत्य और संगीत की ये कलाएं 'अशिक्षितों का मनोरजंन% मानी जाती थीं, जिन्हें सामाजिक तौर पर हाशिये पर रहने वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत किया जाता था. फिर समय बदला और इन्हें सामाजिक विरासत के रुप में मान्यता मिली. रवींद्रनाथ टैगोर जैसे विद्वानों ने 'बाउल' संगीत तो बिरजू महाराज जैसे उस्तादों ने 'कथक' नृत्य को वैश्विक मंच पर पहचान दिलाई. लेकिन, पूर्वाचंल और बिहार की समृद्ध सांस्कृतिक जड़ों में गहराई से समाया 'लौण्डा नाच' ऐसी प्रतिष्ठा हासिल नहीं कर पाया. यह आज भी न केवल उपेक्षित है, बल्कि हेय-दृष्टि से देखा जाता है.

इसी उपेक्षित और हेय-दृष्टि को विषय बनाते हुए नवनीत नीरव ने 'नाच' नाम से उपन्यास लिखा है. 'एकलव्य' से छपा यह उपन्यास दरअसल एक किशोर कलाकार की मनोदशाओं का 'नाच' है. इसमें किशोर की यौनिकता, पहचान और स्वीकृति की छटपटाहट है और एक स्त्री का मन है जो कभी प्रेम, कभी सौंदर्य, कभी सिंगार तो कभी नाच के रुप में व्यक्त होता है. एक तो नाच और उस पर भी स्त्रियों से जोड़ने वाले नाच को जब मर्द करता है तो उसका सच समाज के सामने और अधिक लज्जाजनक रुप से आता है, जबकि इसके लिए वह कहीं जिम्मेदार नहीं है.

उपन्यास की भूमिका में जाएं तो यह सच है कि नाच, नाटक और संगीत के सुंदर मेल से तैयार 'लौण्डा नाच' का स्तर लगातार गिरता जा रहा है, पर इसके साथ यह बात नहीं भूलनी चाहिए जब दूसरी कलाएं मुख्य रुप से अभिजात्य वर्ग के लिए आरक्षित थीं तब कला

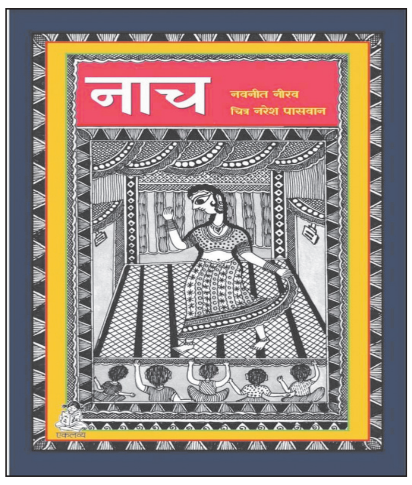

की यह विधा अपनी उत्पत्ति से ही आम जनता के मनोरंजन के लिए उभरी थी.

रेणु जी की 'रसप्रिया' के संदर्भ और अनुभवों से यह कहा जा सकता है कि इस नाच के अधिकतर नर्तक निम्नवर्गीय परिवारों से रहे हैं. ऐसे में बिहार के ग्रामीण अंचल से सरोज जैसे कथित शिक्षित और अपर-कास्ट चरित्र को उठाकर नवनीत ने जो 'नाच' दिखाया है वह वर्तमान की सामाजिक परिस्थितियों की संरचना है. अफसोस कि कई सारे सामाजिक बदलावों के विर्मश से यह संरचना अदृश्य और अछूती है.

'नाच' में दो कहानियां एक साथ चलती हैं. दोनों में कोई ढाई हजार वर्ष का अंतर है और सीधे तौर पर दोनों आपस में जुड़ती भी नहीं. लेकिन, 'नाच' की दृष्टि से यह अंतराल असल में कलाओं को लेकर सोशल माइंड-सेट की एक यात्रा दिखाता है. पहली कहानी एक पृष्ठभूमि की तरह आती है जहां भरतमुनि के समकालीन ही महान नाट्य विद्वान कृशाश्व और शिलालीन हैं, जिन्हें नाच देखने के कारण आश्रमों से निकाल दिया गया था.

दूसरी और मूल कहानी सरोज की है, जो वर्तमान में पहली कहानी की जिज्ञासा को खोलती है, उस पर संवाद करती है और उस उद्देश्य की ओर बढ़ती है जिसका सपना कृशाश्व और शिलालीन ने देखा था.

'नाच' के मुख्य चरित्र सरोज के मन की गांठ को विचार और भावना के स्तर पर बड़ी कसमसाहट के साथ बुनने और खोलने की कड़ी में आपसी संबंधों के बड़े मार्मिक प्रसंग हैं. इस गांठ के बारे में न सरोज की मां, न उसके पिता और न ही वह गांव समझ पाता है जहां उसका बचपन बीता, बल्कि मां की ममता और पिता की सख्ती के सतह में दबा प्यार भी एक किशोर मन को सामाजिक व्यवस्थाओं के तहत ही निर्धारित करना चाहता है.

दरअसल, कला के जिस रुप को कोई व्यक्ति बतौर दर्शक पसंद करता है और उसे मनोरंजन समझकर अपनाता है उसमें एक कलाकार के नाते अपने प्रियजन की भूमिका को नहीं रखना चाहता है. ऐसे में एक कलाकार को अलग ही तरह के संघर्ष से जूझना पड़ता है और तलाशनी पड़ती है वह दुनिया जहां उसके लिए एक व्यक्ति के तौर पर न केवन प्रेम और अपनापन हो, बल्कि एक कलाकार के रुप में भी सम्मान और आजादी हो. करीब 70 पृष्ठों का यह छोटा उपन्यास भले ही किशोरों को ध्यान में रखकर लिखा गया हो लेकिन किसी किशोर के मन को समझने के लिए यह व्यस्कों के काम भी आ सकता है.

'नाच' लोक से जुड़ता है और लोकगीतों के प्रयोग के चलते अनूठा बन पड़ता है. वहीं, कहीं-कहीं कल्पनाओं के प्रयोग 'नाच' के यर्थाथ को और गहरा कर देते हैं. ये कल्पनाएं अक्सर सरोज की नींद में सपने बनकर आती हैं और उसकी संवेदना, इच्छा तथा प्रवृतियों को आकार देती हैं.

इसी तरह, नचनिया मास्टर और कन्हाई यहां केवल चरित्र नहीं हैं, बल्कि 'नाच' रचना के सूत्र हैं. ये सूत्र सरोज ही नहीं सरोज से ढाई हजार वर्ष पीछे जाकर कृशाश्व और शिलालीन से भी जुड़ते हैं, जहां उनकी बातों के बीच एक कथन याद आता है. यह कथन कहानी के अंत में है. कथन है- यह नाट्य चलता रहेगा.

नाच (किशोर उपन्यास)
प्रकाशक - एकलव्य, भोपाल
मूल्य - 75 रुपये

आयोजन

बारिश में खिली-खिली प्रकृति से सीखे रचने के गुर

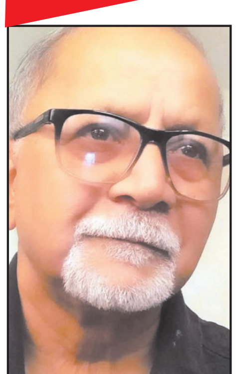

नरेश कानूनगो

लिट्रेचर क्लब देवास की अनूठी और नवाचारी पहल

लिट्रेचर क्लब की गतिविधियाँ नवीनता लिये आनंददायी होती हैं. मासिक गोष्ठी के अलावा किसी यात्रा पर जाना सभी साथियों को बहुत रास आता है. किसी स्थान के ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिये, साहित्यिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिये, समय - समय पर होने वाली ये यात्रायें, सभी के बीच अपना एक अलग - सा महत्व रखती हैं. ये यात्रायें नयी - नयी जगहों की जानकारियां पाने के साथ ज्ञानवर्धक होती हैं और लेखन के कार्य के नये, अदभुत विषय दे जाती हैं.

देवास में पैदाइशी होने के बावजूद विंध्याचल पर्वत की वादियों में बसे बागली अंचल के दिलकश नजारे अब तक देखने के मौके नहीं मिले थे सो उन्हें देखने, वहां घाटियों में फैली अनोखी बरसाती हरियाली को देखने की उत्कंठा तीव्र हो उठी.

रविवार की सुबह रिमझिम बारिश की फुहारों के बीच आगे बढ़ते हुए हम जहां से भी गुजरे थे वे सभी स्थान पहाडों से घिरे हुए थे और मीलों तक हरियाली की

चादरें बिछी नजर आती थी जो आँखों के साथ मन को भी अजब - गजब सा सुकून दे रही थी. उन्हीं पहाड़ियों के बीच जगह - जगह गिरते पानी के छोटे बड़े झरने मन को आल्हादित किये जा रहे थे. सपाट जगहों पर पत्थरों के उपर से तेजी से बहता पानी कल - कल के अनूठे स्वर पैदा कर रहा था, जिसे सुन संगीत के अनोखे स्वरों का अहसास होता था. ऐसे नजारों को पहले फिल्मों में ही देखा था जिन्हें अपनी नजरों के सामने होता देख आनंद अपनी चरम सीमा पर था.

हरियाली लिये दूर दूर तक फैले सागौन के जंगलों के साथ मक्का के खेत, सीताफल के बाग़ीचे और अन्य जंगली पेड़ - पौधे कुछ नवीन कोपलें लिये तो कुछ अपने विविधवर्णी फूलों के साथ वातावरण को अनोखी आभा दे रहे थे.

इस भ्रमण-गोष्ठी का संयोजन मनीष वैद्य और हिमांशु कुमावत ने किया. हम सबने इसमें खूब-खूब सीखा.

कविताएं

'क्षमा वाणी' पर्व पर विशेष

'क्षमा वीरस्य भूषणम्'

'क्षमा' कहना शब्द है जितना सरल।
छोड़ना उतना कठिन,'मैं' का गरल।
बेबजह ही अहम् में न लुटें साँसें -
आओ करते 'क्षमा' की हम ही पहल।

'सहज आतम धर्म , पर्युषण की क्षमा।
दस व्रतों की भक्ति में तन-मन रमा।
आप-हम आहत हुए, गर भूल से तो-
मांगता हूं मैं क्षमा,कर रहा हूं मैं क्षमा।'

✍ पद्म श्री कैलाश मड़बैया

पवन शर्मा

काग़ज़ की बातें

काग़ज़ पर रोज़ छपती हैं बातें,
जैसे- देश बदल रहा है,
आत्मनिर्भर हो रही जनता,
और कहीं कोने में
एक बच्चा भूखा सो रहा होता है.

ख़बरों के नीचे
एक स्त्री की चीख़ दबी मिलती है —
दहेज नहीं था',
आत्महत्या मानी गई,
और संपादक ने
उसे प्रमुख पन्ने में,
पर छोटी सी जगह दी.

संपन्न कॉलोनियों के बीच
एक झोपड़ी जल रही होती है,
जिसका नाम शॉर्ट सर्किट रख दिया जाता है,
ताकि आग की वजह
कभी ग़रीबी न मानी जाए.

विज्ञापन कहता है —
हर सुबह बेहतर होती है,
पर चायवाले की उबलती केतली
अब भी कल की बची पत्ती से काम चला रही है.

जनता की आवाज़ें
अब हेडलाइन नहीं बनतीं,
क्योंकि वायरल होना
असली होने से ज़्यादा ज़रूरी हो गया है.

पर फिर भी —
हर सुबह, जब यह अख़बार मोड़ा जाता है,
एक उम्मीद अंदर रह जाती है —
कि किसी दिन
किसी कोने में
हमारी भी बात छप जाएगी.

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी